



भारतीय ज्ञान परंपरा: विविधता में एकता की साधना

डॉ संतोष कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

* Corresponding Author: डॉ संतोष कुमार सिंह

Article Info

P-ISSN: 3051-3502

E-ISSN: 3051-3510

Volume: 05

Issue: 01

January - June 2024

Received: 02-01-2024

Accepted: 04-02-2024

Published: 10-03-2024

Page No: 121-123

सार

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की उन विरल परंपराओं में से एक है, जिसने विविधता को विभाजन का कारण नहीं, बल्कि एकता की साधना का माध्यम माना। यह परंपरा निरंतर ज्ञान-साधना, संवाद, ग्रहणशीलता और समन्वय पर आधारित रही है। इसमें धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य, संगीत और स्थापत्य—सभी एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि सहयात्री रहे हैं। भारतीय नवजागरण का स्वरूप भी इसी कारण पाश्चात्य नवजागरण से भिन्न दिखाई देता है, जहाँ धर्म और विज्ञान के बीच टकराव के बजाय संवाद और सह-अस्तित्व का मार्ग अपनाया गया। यह शोध-पत्र भारतीय ज्ञान परंपरा की इसी समन्वयकारी, लोकतांत्रिक और मानव-केंद्रित दृष्टि का विश्लेषण करता है, जिसमें आस्तिक-नास्तिक दर्शनों, चार पुरुषार्थों, मंदिर कला, योग, बौद्ध चिंतन, सामाजिक समरसता और सर्वधर्म सम्भाव की अवधारणाओं को केंद्र में रखा गया है।

DOI: <https://doi.org/10.54660/IJMER.2024.5.1.121-123>

कुंजी शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा, विविधता में एकता, नवजागरण, धर्म और विज्ञान, सर्वधर्म सम्भाव, चार पुरुषार्थ, भारतीय कला

शोधपत्र

भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल स्वभाव निरंतर साधना और संवाद में निहित रहा है। यह परंपरा किसी एक कालखंड, मत, भाषा या भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रही, बल्कि समय और समाज के साथ स्वयं को निरंतर विकसित करती रही है। भारतीय समाज में ज्ञान को केवल संग्रह करने की वस्तु नहीं माना गया, बल्कि उसे जीवन-व्यवहार से जोड़कर देखने की परंपरा रही। इसी कारण यहाँ ज्ञान का अर्थ केवल बौद्धिक उपलब्धि नहीं, बल्कि आत्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास भी रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा की सबसे बड़ी विशेषता उसकी ग्रहणशीलता रही है। भारत ने चीन, अरब और पश्चिमी देशों से गणित, खगोल, चिकित्सा, भाषा और विज्ञान के क्षेत्र में बहुत कुछ ग्रहण किया और उसे अपने सांस्कृतिक संदर्भ में ढालकर विश्व को लौटाया। इस ज्ञान-विनिमय में व्यापार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। प्राचीन व्यापारिक मार्ग केवल वस्तुओं के आदान-प्रदान के साधन नहीं थे, बल्कि वे विचारों, ग्रंथों और सांस्कृतिक मूल्यों के संवाहक भी बने। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा का विस्तार केवल आध्यात्मिक यात्राओं से नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन से भी जुड़ा रहा। भारतीय दर्शन में ज्ञान को सात्त्विक, राजसिक और तामसिक रूपों में समझा गया। इससे यह स्पष्ट होता है कि यहाँ ज्ञान को एकरूप नहीं, बल्कि बहुस्तरीय और बहुविध माना गया। भारतीय चिंतन ने खंडों में विभक्त अनुभवों के बीच से अखंड सत्य की खोज करने का प्रयास किया। यही कारण है कि यहाँ भिन्नता को नकारने के बजाय स्वीकार किया गया और उसी के माध्यम से अभिन्नता का संधान किया गया। भारतीय ज्ञान परंपरा ने बाह्य और आंतरिक संसार के बीच संतुलन स्थापित किया। एक ओर प्रकृति, समाज और भौतिक जगत का सूक्ष्म निरीक्षण और परीक्षण हुआ, तो दूसरी ओर मन, चेतना और आत्मा के स्तर पर गहन साधना विकसित हुई। दिशा और दशा—दोनों पर एक साथ कार्य करने की यह प्रवृत्ति भारतीय चिंतन को एकांगी होने से बचाती है।

यहाँ विज्ञान केवल बाह्य जगत को समझने का साधन नहीं रहा, बल्कि वह आत्मानुशासन और जीवन-संयम से भी जुड़ा रहा। चिकित्सा, स्थापत्य, नाट्यशास्त्र, संगीत और शिल्प के क्षेत्र में भारतीय परंपरा ने सुव्यवस्थित शास्त्र विकसित किए। आयुर्वेद और शल्यचिकित्सा में रोग-निदान, उपचार और परीक्षण की स्पष्ट पद्धतियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार स्थापत्य और वास्तुशास्त्र में यह निर्धारित किया गया कि किस दीवार पर क्या होना चाहिए और कौन-सा स्थान रिक्त नहीं छोड़ा जाना चाहिए। भारतीय प्राचीन मंदिरों और घरों में इन सिद्धांतों के स्पष्ट प्रमाण देखे जा सकते हैं। चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—भारतीय जीवन-दृष्टि का आधार हैं। ये केवल दार्शनिक अवधारणाएँ नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानव जीवन का समन्वित ढाँचा प्रस्तुत करती हैं। मंदिर इन चारों पुरुषार्थों का मूर्त रूप हैं। मंदिर की बाहरी दीवारों पर नर-नारी संबंध, अर्थ और काम से जुड़े दृश्य अंकित मिलते हैं, क्योंकि यही इन्द्रियों पर आधारित मानवीय जीवन संघर्ष और हिंसा का कारण बनता है। इसके विपरीत, मंदिर के आंतरिक भाग में प्रेम, करुणा, क्षमा, दया और त्याग के देवता प्रतिष्ठित होते हैं। यह बाह्य और आंतरिक जीवन के बीच संतुलन स्थापित करने की भारतीय कला-दृष्टि को प्रकट करता है। भारतीय मंदिर केवल पूजा-स्थल नहीं थे, बल्कि वे कला, संगीत, नृत्य और नाटक के प्रशिक्षण केंद्र भी रहे। मथुरा के हवेली केंद्र हों या दक्षिण भारत के भव्य मंदिर—ये सभी सांस्कृतिक शिक्षा के जीवंत केंद्र थे। मध्यकाल में मुस्लिम शासन के आगमन के बाद भी स्थापत्य कला में समन्वय की यह प्रवृत्ति बनी रही। विभिन्न सांस्कृतिक प्रभावों के बावजूद मूल भारतीय दृष्टि समाप्त नहीं हुई, बल्कि नए रूपों में विकसित होती रही। अशोक स्तंभ और नटराज की प्रतिमा भारतीय प्रतीकात्मक चिंतन की उत्कृष्ट मिसाल हैं। अशोक स्तंभ के आधार पर अंकित पशु—हाथी, अश्व, वृष और सिंह—मानवीय चेतना, कर्म, साधना और निर्भयता के प्रतीक हैं। चारों दिशाओं में मुखी सिंह बुद्ध के धम्म के सार्वभौमिक विस्तार का संकेत देते हैं। नटराज की प्रतिमा में संगीत, लय और ब्रह्मांडीय गति पत्थर में साकार हो उठती है, जो यह दर्शाती है कि भारतीय कला में विज्ञान, दर्शन और सौंदर्य एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा की एक और महत्वपूर्ण विशेषता आस्तिक और नास्तिक दर्शनों का सह-अस्तित्व है। वेदांत, भक्ति और आगमिक परंपराओं के साथ-साथ बौद्ध, जैन, सांख्य और योग दर्शन भी समान रूप से विकसित हुए। बुद्ध का मार्ग कर्म-सिद्धांत पर आधारित है, जहाँ मनुष्य अपने कर्मों के माध्यम से विकास की सर्वोच्च अवस्था प्राप्त कर सकता है। योग दर्शन में शरीर साधन नहीं, बल्कि साध्य बन जाता है। वाक्-शक्ति, प्राण-शक्ति और मन-शक्ति के नियमन द्वारा साधक उच्च अवस्था को प्राप्त करता है। इसी कारण योग केवल भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि विश्व के अनेक देशों में विस्तारित हुआ। पाश्चात्य नवजागरण में ईश्वर के स्थान पर मनुष्य और धर्म के स्थान पर राज्य को केंद्र में रखा गया, जिससे चर्च और विज्ञान के बीच तीव्र संघर्ष उत्पन्न हुआ। इसके विपरीत भारतीय नवजागरण में विज्ञान का स्वागत हुआ। यहाँ बड़े वैज्ञानिकों और धर्म-मनीषियों के बीच मूलतः कोई तीखा टकराव नहीं दिखाई देता। इसका कारण यह है कि भारतीय परंपरा में धर्म मनुष्य के लिए था, मनुष्य की कीमत पर नहीं। धर्म ने मनुष्य की चेतना की विविध अवस्थाओं—विचारशील, कार्यशील और भावशील—को स्वीकार

करते हुए ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग जैसे विकल्प प्रदान किए। सामाजिक स्तर पर भारतीय ज्ञान परंपरा ने विविधताओं के बीच अभेद स्थापित करने का प्रयास किया। जाति, वर्ग और सामाजिक भिन्नताओं को स्थायी विभाजन मानने के बजाय, मानव सेवा के माध्यम से उन्हें कम करने की कोशिश की गई। सेवा, करुणा और सह-अस्तित्व को धर्म का व्यावहारिक रूप माना गया। यही कारण है कि भारतीय परंपरा में धर्म सामाजिक समरसता का साधन बनता है, न कि संघर्ष का। भाषा, साहित्य, कला, संगीत और स्थापत्य में भारतीय धर्मनिरपेक्षता—अर्थात् सर्वधर्म सम्भाव—स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। “सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय” का सिद्धांत भारतीय चिंतन की आत्मा है। यही समन्वयवादी दृष्टि भारत की सॉफ्ट पावर है और यही उसे विश्व में पुनः श्रेष्ठ रूप में स्थापित कर सकती है। आधुनिक भारत, विशेषतः स्वतंत्रता के बाद, परंपरा और आधुनिकता के इसी संतुलन पर आगे बढ़ा है।

अतः भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि भविष्य की दिशा है। यह परंपरा हमें सिखाती है कि हम विश्व को कुछ देने के साथ-साथ उससे सीखने की स्थिति में भी रहें, और जो स्वीकार करने योग्य हो, उसे विवेकपूर्वक स्वीकार करें। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस मानव-केंद्रित, लोकतांत्रिक और समन्वयकारी परंपरा को हम कभी कमजोर नहीं होने देंगे। अतः भारतीय ज्ञान परंपरा का अध्ययन केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि भविष्य की दिशा है। यह परंपरा हमें सिखाती है कि हम विश्व को कुछ देने के साथ-साथ उससे सीखने की स्थिति में भी रहें, और जो स्वीकार करने योग्य हो, उसे विवेकपूर्वक स्वीकार करें। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस मानव-केंद्रित, लोकतांत्रिक और समन्वयकारी परंपरा को हम कभी कमजोर नहीं होने देंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली – Indian Philosophy, Vol. I–II, George Allen & Unwin, London.
2. दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ – A History of Indian Philosophy, Cambridge University Press.
3. कपिल कपूर – Indian Intellectual Traditions, DK Printworld, New Delhi.
4. पोलक, शेल्डन – The Language of the Gods in the World of Men, University of California Press.
5. विवेकानंद – The Complete Works of Swami Vivekananda, Advaita Ashrama, Kolkata.
6. अरविंद (Sri Aurobindo) – The Life Divine, Sri Aurobindo Ashram, Pondicherry.
7. शर्मा, रामधारी सिंह ‘दिनकर’ – संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.
8. नीलकंठ शास्त्री, के.ए. – A History of South India, Oxford University Press.
9. मजूमदार, आर.सी. – The History and Culture of the Indian People, Bharatiya Vidya Bhavan.
10. थापर, रोमिला – Cultural Pasts, Oxford University Press.
11. कोसांबी, डी.डी. – An Introduction to the Study of Indian History, Popular Prakashan.

12. चट्टोपाध्याय, देवेन्द्रनाथ – Lokayata: A Study in Ancient Indian Materialism, People's Publishing House.
13. एलियट, चार्ल्स – Hinduism and Buddhism, Routledge.
14. ह्वेनसांग – Si-Yu-Ki: Buddhist Records of the Western World, Trans. Samuel Beal.
15. अल्बेरूनी – Kitab-ul-Hind, Trans. Edward Sachau.
16. नागार्जुन – Madhyamaka Karika, Motilal Banarsidass.
17. पतंजलि – योगसूत्र, विभिन्न टीकाएँ, चौखम्बा प्रकाशन.
18. यास्क – निरुक्त, चौखम्बा संस्कृत संस्थान.
19. भरतमुनि – नाट्यशास्त्र, चौखम्बा सुरभारती.
20. विश्वनाथ काविराज – साहित्यदर्पण, चौखम्बा प्रकाशन.
21. ज़िम्मर, हाइनरिख – Philosophies of India, Princeton University Press.
22. म्यूलर, मैक्स – Six Systems of Indian Philosophy, Longmans.
23. सेन, अमर्त्य – The Argumentative Indian, Penguin.
24. टैगोर, रवीन्द्रनाथ – Nationalism, Macmillan.
25. गांधी, मोहनदास करमचंद HindSwaraj, Navajivan Publishing House.
26. पाणिनि – अष्टाध्यायी, चौखम्बा प्रकाशन.
27. शंकराचार्य – ब्रह्मसूत्र भाष्य, गीता प्रेस, गोरखपुर.
28. रामानुजाचार्य – श्रीभाष्य, श्री वैष्णव ग्रंथागार.
29. कबीर – बीजक, राजकमल प्रकाशन.
30. तुलसीदास – रामचरितमानस, गीता प्रेस, गोरखपुर.